International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(6): 194-197

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 20167; 2(6): 194-197
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 20-09-2016
Accepted: 21-10-2016

डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार
एसोशिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
के0 ए0 (पी जी) कॉलेज
कासगंज (उ0 प्र0)

Correspondence
डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार
एसोशिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
के0 ए0 (पी जी) कॉलेज
कासगंज (उ0 प्र0)

तिङन्त एवं कृदन्त क्रियापदों में भाव (क्रिया) के भेद का विवेचन

डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार

सारांश
शोधपत्र का विवेच्य विषय 'सार्वधातुके यक्' (अष्टाध्यायी, 3–1–67) सूत्र पर महाभाष्य में किया गया भाव अथवा क्रियाविषयक गवेषण है। तिङन्त एवं कृदन्त के रूप में पाणिनि ने द्विविध क्रियाओं का उपदेश किया है। इन दोनों प्रकार के पदों के द्वारा जिस भाव या क्रिया का अर्थावबोध होता है उसमें स्वरूपतः क्या भेद होता है? उसको समझने का विनम्र प्रयास किया गया है।

प्रस्तावना
पाणिनि के सूत्रों एवं कात्यायन के वार्त्तिकों पर पतंजलि ने महाभाष्य का प्रणयन किया है। संस्कृत व्याकरण एवं भाषाविषयक विचारों को समन्वित किये यह ग्रन्थरत्थ 85 आह्निकों में उपनिबद्ध है। इसमें पतंजलि ने अनेक भाषाविषयक प्रसंगों की सूक्ष्म एवं तात्विक विवेचना प्रस्तुत की है। इन विवेचनों में निहित भावों की गम्भीरता बहुधा विषयबोध को सरलता से हृदयंगम, करने में बाधक बनती है जिसके लिए हमें महाभाष्य की टीकाओं एवं अनुटीकाओं की सहायता लेनी होती है। इन टीकाओं में कैय्यट कृत प्रदीप, अन्नंभट्टकृत प्रदीपोद्योतन, नारायणकृत नारायणीयम्, शिवरामेन्द्रकृत सिद्धान्तरत्नप्रकाश एवं नागेशभट्टकृत प्रदीपोद्योत प्रमुखतम हैं।
शोधपत्र का विवेच्य विषय 'सार्वधातुके यक्' (अष्टाध्यायी, 3–1–67) सूत्र पर महाभाष्य में किया गया भाव अथवा क्रियाविषयक गवेषण है। तिङन्त एवं कृदन्त के रूप में पाणिनि ने द्विविध क्रियाओं का उपदेश किया है। इन दोनों प्रकार के पदों के द्वारा जिस भाव या क्रिया का अर्थावबोध होता है उसमें स्वरूपतः क्या भेद होता है? उसको समझने का विनम्र प्रयास किया जा रहा है।
क्रिया क्रियया समवायं न गच्छति–पचति पठतीति। महा0 3–1–67
'तिङ्' प्रत्यय के द्वारा भावाभिधान में तथा 'कृत्' प्रत्यय के द्वारा भाव या क्रिया के अभिधान में क्या अन्तर होता है? इस विवेचन के द्वारा भाष्यकार 'तिङन्त' व 'कृदन्त' क्रियापदों के साथ उनसे बोधित क्रिया का स्वरूप प्रकट करना चाहते हैं। कृदभिहित भाव 'द्रव्यवत्' होता है। अतः उसका द्रव्य की भाँति अन्य क्रियाओं के साथ समवाय होता है, यथा–'पाको वर्तते'। कृदन्त पद क्रिया की सिद्धावस्था को प्रकट करते हैं।इसलिए उनमें क्रियात्व या साध्यत्व गौणरूप में होता है।
कृदभिहित भाव 'क्रियावत्' नहीं होता है। 'क्रियावत्' से तात्पर्य 'भाव की साध्यावस्था के तुल्य' होने से है। विषयबोध के लिये पतञ्जलि अपनी चिर परिचित शैली में प्रश्न करते हैं कि 'क्रियावत् का क्या अर्थ है? क्रिया (साध्यभाव) अन्य क्रिया से समन्वित नहीं होती है। यथा–'पचति पठति' यहाँ दोनों का परस्पर अन्वय नहीं होता है। साध्यभाव क्रियान्तर निराकाँक्ष होने से अन्य साध्यक्रिया के साथ अन्वित नहीं होता है, जबकि कृदभिहित सिद्धभाव क्रियान्तर का साकांक्ष होने से 'पाको वर्त्तते' के रूप में उसमें क्रियान्तर से अन्विति सम्भव हो जाती है।
कैय्यट अपनी व्याख्या में कहते हैं कि कर्त्ता एवं कर्मभाव से क्रिया अन्य क्रिया से सम्बन्धित होती है। जैसे कि 'भवति पचति' यहाँ 'किम् भवति' की आकांक्षा में 'पचति' या 'पचति भवति' का समन्वय होता ही है। यहॉ 'पचति ' कर्त्ता के रूप में भवति के साथ अन्वित हुआ है। [1] 'पश्य मृगो धावति' में 'कं पश्य?' की आकांक्षा में 'मृगो धावति तं पश्य' के रूप में सरणक्रिया का कर्तृरूप आश्रय मृग सरणक्रिया के साथ कर्मरूप से 'दृश' के साथ अन्वित होता है। [2] यहॉ मृगकर्तृक–धावन क्रिया का साध्य है, किन्तु 'दृश्' की अपेक्षा से मृग साधन में आश्रित हेाती हुई वह साधन बन जाती है तथा कर्मरूप में क्रिया से अन्वित होती है। इस प्रकार कर्त्ता व कर्म के रूप में एक क्रिया अन्य क्रिया के साथ समवेत हो जाती है। अतः 'क्रिया क्रिया से संयुक्त या अन्वित नहीं होती है' इस भाष्योक्ति का आशय यह समझना चाहिए कि करणादि–साधन के रूप में क्रिया का क्रिया के साथ समवाय नहीं होता है। [3] आदि पद से सम्प्रदान, अपादान आदि कारक परामृष्ट हैं।

इस विषय में यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि साध्य होने के कारण कोई क्रिया क्रियान्तर के प्रति कर्म अथवा कर्तृभाव को कैसे प्राप्त कर सकती है? यह कोई दोष नहीं है क्योंकि विषयभेद से यह सम्भव है कि कोई एक अर्थ एक विषय की अपेक्षा से साध्य हो, पुनः वही अन्य विषय के लिए सापेक्ष साधन बन जाये। [4] जैसा कि भर्तृहरि ने कहा है– 'जिस मृग के प्रति सरणक्रिया का साध्यत्व है वह क्रिया उसके प्रति असिद्ध होती है। जिस मृग के विषय में सरणक्रिया का साध्यत्व प्रतिपादित हो गया हो, पुनः उस मृग के प्रति वह क्रिया सिद्ध रूप में अन्वित नहीं होती है।' यह अर्थ समानविषय की अपेक्षा से है। किन्तु विषयभेद होने पर सरणक्रिया का साध्यत्व एवं साधनत्व दोनों उत्पन्न होते हैं यदि विषयभेद होता है यथा– **'मृ**गो धावति पष्य' इस वाक्य में। [5]

आख्यातवाच्य भाव का कर्तृत्व एवं कर्मत्व विरूद्ध नहीं है क्योंकि उसका कर्तृत्व सामान्यक्रिया 'भवति' की अपेक्षा से है। सभी साध्य एवं सिद्धरूप 'अर्थ अपने 'स्व' रूप से विद्यमान होते हैं' (स्वेन रूपेण भवति)। इस प्रकार भवन (भवति) में कर्तृत्व उपपन्न होता है। [6] इसीप्रकार कर्म भी 'क्रियाफल' होने से प्रधान होता है। अतः वह भी उस भाव का अभिन्न अंग होता है। [7] किन्तु करणादि कारक भाव के गौण कारक होते हैं, इसलिये वे इसमें गौणभाव से अन्वित होते हैं। प्रधान से अत्यन्त विरोध के कारण भाव का करणत्वभाव से अन्वय नहीं होता है। [8]

शिवरामेन्द्र ने प्रथम 'क्रिया' पद का अर्थ 'तिङर्थ' किया है तथा द्वितीय 'क्रिया' पद का अर्थ 'धात्वर्थ' ग्रहण किया है। एतदनुरूप वाक्यार्थ होता है कि 'धात्वार्थ से तिङर्थ सम्बन्ध को नहीं प्राप्त होता है।' 'पाचकः पठति' के समान 'पचति पठति' यह परस्पर अन्वित प्रयोग नहीं होता है।

शिवरामेन्द्र ने अग्रिम भाष्यवाक्य–'तद्वच्चास्य कृदभिहितस्य न भवति यथा– पाको वर्त्तत इति' का अर्थ किया है कि 'क्रियावत्' के समान कृदभिहित भाव का क्रियासमवायाभाव नहीं होता है। यथा–पाको वर्त्तते। इसप्रकार 'पचति वर्त्तते' यह प्रयोग भी नहीं होता है। [9] इसका तात्पर्य है कि कृदभिहित भाव होने के कारण 'पाकः वर्त्तते' का परस्पर अन्वय होता है किन्तु 'पचति वर्त्तते' में नहीं होता है। इस व्याख्या के आधार पर शिवरामेन्द्र कैय्यट की व्याख्या के खण्डन में तत्पर हो जाते हैं।

क– कैय्यट का यह कथन कि यदि 'भवति पचति' एवं 'पश्य मृगो धावति' में क्रमशः कर्तृकर्मभाव से क्रिया अन्यक्रिया के साथ सम्बद्ध होती है, तो भाष्यवाक्य में करणादिरूप से क्रिया क्रिया से समवेत नहीं होती है ऐसा विवक्षित जानना चाहिये। मेरी उपरोक्त व्याख्या के आधार पर यह खण्डित होता है। [10] इस खण्डन के चार हेतु हैं–

1. 'भवति पचति' इस उदाहरण में 'पचति' के द्वारा उक्त अर्थ ही भवनकृर्तक भवति के द्वारा अनूदित है जैसे कि 'द्वावपूपावानय' में 'अपूपौ' के द्वारा कथित द्वित्व को 'द्वौ' के द्वारा अनूदित किया जाता है। अतः यहाँ तिङर्थ का धात्वर्थ में कर्तृत्व के रूप में अन्वय का अभाव है। [11]
2. तिङन्त में धात्वर्थ के प्राधान्य का भाष्यकार ने पस्पशाह्निक में ही निराकरण कर दिया है अर्थात् खण्डन कर दिया है। [12]
3. 'पश्य मृगो धावति' इसमें 'घटोऽस्ति आनय' के समान 'मृगः धावति तं पश्य' के रूप में अन्वय की अपेक्षा 'तम्' पद का अध्याहार करके वाक्यभेद करना अधिक उचित है। [13]
4. 'क्रिया क्रियया समवायं न गच्छति' इस भाष्य के अर्थ का 'करणादिरूपेण समवायं न गच्छतीति' इस रूप में अर्थसंकोच करने में प्रमाण का अभाव है। [14]

ख– कैय्यट ने जो यह कहा है कि साध्य होने से क्रिया का कर्तृकर्मभावरूप से क्रियान्तर के साथ समवाय कैसे हो सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया कि विषयभेद से यह सम्भव है। प्रमाणार्थ भर्तृहरि की कारिकाद्वय 1. तत्र यं प्रति0 2. मृगो धावति पश्येति0 प्रस्तुत की गई हैं। यह भी ठीक नहीं है। 1. साध्य का साधनत्व नहीं होता है। अतः सर्वप्रथम की गई शंका निर्मूल होने से तुच्छ है। 2. उस शंका पर आधारित विषयभेदरूप समाधान भी इस कारण से तुच्छ है। 3. 'पश्य मृगो धावति' इस वाक्य में 'दृशिक्रिया' में 'धावन' का कर्मत्वकथन अप्रामाणिक है। [15]

ग– कैय्यट का यह वर्णन भी खण्डनीय है कि कर्तृत्व एवं कर्मत्व आख्यातवाच्य भाव के विरूद्ध नहीं हैं। वह भाव का कर्तृत्व 'भवति' क्रियासापेक्ष है। क्रियाफल होने से कर्म भी प्रधान होता है। अतः भाव का कर्मत्वरूप में भी अन्वय होता है। करणादि का पूर्णतः गौण होने के कारण भाव का करणादिरूप से क्रिया के साथ समवाय नहीं होता है। शिवरामेन्द्र इस खण्डन के कारण स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि प्रकृत भाष्याशय के विरूद्ध आख्यातवाच्य भाव का युक्तिपूर्वक धात्वर्थान्तर के प्रति कर्तृत्व व कर्मत्व सिद्ध करके कैय्यट ने अपनी मूर्खता को ही दृढ. किया है। इस क्रम में भाव की कर्तृत्व व कर्मत्व के रूप में उपपत्ति तथा करणत्वादि अन्य कारकों की उस विषय में अनुपपत्ति सिद्ध करना दृढयुक्ति के अभाव को प्रदर्शित करता है। [16]

इस प्रकार शिवरामेन्द्र ने कैय्यट की इस सन्दर्भ में की गई सम्पूर्ण व्याख्या के साथ भर्तृहरि की कारिकाओं का भी खण्डन कर दिया है।

'आख्यात' शब्द 'ख्याञ् प्रकथने' [17] धातु से करण अर्थ में 'क्त' [18] प्रत्यय से निष्पन्न होता है। वैयाकरणनिकाय में यह शब्द 'आख्यायतेऽनेन' के अनुसार क्रिया का प्रधान रूप से आख्यान करता है अतः 'तिङन्त' को 'आख्यात' कहते हैं। [19] 'आख्यात' पद साधनकालवचनादि अनेक अर्थों का वाचक होता है जिनमें 'प्राधान्येन व्यदेषा भवन्ति' के अनुसार उसे 'भाववाचक' [20] या 'क्रियावाचक' [21] कहते हैं। भाव व क्रिया प्रायः समानार्थक हैं। पतञ्जलि क्रिया को 'व्यापार' कहते हैं। [22] पुनः उसका स्वरूप स्पष्ट करते हुये वे उसे अत्यन्त अपरिदृष्टा, परमाणुओं के पिण्डभूत द्रव्यों की भाँति पिण्डीभूतरूप से जिसका निर्देश नहीं किया जा सकता है। कुक्षिस्थ गर्भ की भाँति जो अप्रत्यक्ष होती है। [23] वह ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार 'भाव' एक होता है भिन्न रूप में प्रतीत होने पर भी वह तत्वतः अभिन्न होता है। [24] असत्वभूत व अद्रव्यधर्मी होने से उसे 'भाव' कहते हैं, ऐसा कैय्यट प्रतिपादित करते हैं। [25] भावरूप में स्थित एक क्रिया विकारदशा में अनेकरूपों में विभाजित हो जाती है। इसीदृष्टि से वार्ष्यायणि ने 'षड्भावविकार' का प्रतिपादन किया है। [26] भाष्यकार भी इस षड्भावविकार से सुपरिचित हैं। अधिश्रयणात् अधःश्रयणपर्यन्त 'पच्' यह एक क्रिया अनेकक्रियाओं का कार्यकारणरूप समूह होता है। जिसमें पूर्ववर्ती क्रियायें 'पच्' इस साध्य की अपेक्षा से सिद्ध होकर साधनरूप से उसमें अन्वित होकर उसकी उपकारक होती हैं। भाष्यकार ने स्पष्ट कहा है कि क्रिया भी क्रिया से ईप्सित होती है यथा–संपश्यति क्रिया से प्रार्थयति एवं अध्यवस्यति क्रिया। वह इस प्रकार होती हैं कि कोई मनुष्य किसी अर्थ को मन में देखता है, देखकर प्रार्थना करता है फिर क्रमशः अध्यवसाय, आरम्भ एवं क्रियानिर्वृत्ति करता है, निर्वृत्ति होने पर फलावाप्ति होती है। इस प्रकार क्रिया भी कृत्रिम कर्म कहलाती है। [27] भाष्यकार ने क्रिया को कर्ता भी माना है। [28] निरुक्तकार यास्क ने भी आख्यात के द्वारा भाव का कथन पूर्वापरीभूत उपक्रमप्रभृति अपवर्गपर्य्यन्तरूप से अनेक भावान्वित होकर 'व्रजति', 'पचति' इस रूप में माना जाता है। [29] उन्होंने इस प्रसंग में आगे भाव का एकत्व व अनेकत्व इस प्रकार सिद्ध किया है कि 'भवति' इत्यादि क्रिया का सामान्य रूप उसके एकत्व का तथा 'शेते' 'व्रजति' आदि विशेषक्रिया का उपदेश 'भाव' के अनेकत्व का बोधक है। [30]

भाव की दो अवस्थायें होती हैं 'साध्यावस्था' एवं 'सिद्धावस्था'। 'भाव' अदृष्ट होता हुआ भी साध्यावस्था में कर्त्ता में आश्रित होकर 'क्रिया' या 'व्यापार' के रूप में दृष्ट होता है। तथा उसकी सिद्धावस्था 'कर्म' में आश्रित होकर 'फल' के रूप में प्रकट होती है। इस विवेचन का सार यह है कि पतञ्जलि 'तिङन्तवाच्य भाव को एक व अनेक मानते हैं। पूर्वापरीभूत होने से क्रिया– क्रिया से अन्वित होती है। कृत्रिम रूप से क्रिया व कर्ता को कर्म मानते हैं।

इन तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुये प्रकृत भाष्यवाक्य का सूक्ष्म अवलोकन करें, तो भाव के एकत्व पक्ष में तिङन्त से उस रूप में उसकी अभिव्यक्ति मानने पर क्रिया का क्रिया से समन्वयाभाव का प्रसंग ही उत्पन्न नहीं होता है । अतः स्पष्ट है कि यहाँ तिङन्त से अनेक भावों की अभिव्यक्ति अभीष्ट है। साध्य व सिद्धक्रिया के अन्वयी कर्त्ता व कर्म मुख्य कारक होते हैं किन्तु करणादि कारक क्रिया के सहयोगी कारक होते हैं। कर्त्ता व कर्म में समवाय सम्बन्ध से क्रिया विद्यमान रहती है [31] करणादि के साथ क्रिया का संयोगसंबन्ध [32] होता है अतः क्रिया से क्रिया अन्वय के प्रसंग में कर्त्ता व कर्म के भाव में उसके अन्वय में कोई बाधा नहीं होती है। किन्तु करणादिभाव में क्रिया का क्रिया से अन्वय सम्भव नहीं होता है अतः उक्त भाष्यवाक्य में क्रिया का क्रियान्वयबाध में करणादिभाव अर्थ ही अभीष्ट हैं।

कैय्यट ने पतञ्जलि के समस्त पूर्वापर प्रसंगों को दृष्टिगत रखते हुये इस वाक्य की गहन व तात्विक व्याख्या की है। इस विवेचन के दौरान यह कहना न होगा कि उनकी व्याख्या भाष्यानुरूप नहीं है। कैय्यट ने अपनी व्याख्या के द्वारा अपनी सूक्ष्मेक्षिका का प्रदर्शन किया है।

नागेश ने कर्त्ता व कर्म कारकों के अपेक्षा से करणादि का अप्राधान्यवर्णन को चिन्त्य बताते हुये उसके भी प्राधान्य का वर्णन किया है, तथा भाव के रूप में उसका अन्वयाभाव स्वभाविक माना है। [33]

शिवरामेन्द्र की व्याख्या भाष्य के स्थूल भावों को ग्रहणकर की गयी है जोकि सूक्ष्म भाष्याशय के प्रतिकूल है। कैय्यट का खण्डन अतार्किक है।

शिवरामेन्द्र ने अपनी व्याख्या में प्रथम क्रियापद से 'तिङर्थ' व द्वितीय से 'धात्वर्थ' किस प्रमाण से ग्रहण किया है जबकि भाष्यकार का मत है कि 'प्रकृतिप्रत्ययौ प्रत्ययार्थं सह ब्रूतः' [34] 'पचति वर्तते' में क्रिया का क्रिया से अन्वय का न होना, यह कहना भी अनुचित है क्योंकि जो आख्यात पद अस्तित्व को कहते हैं वे सामान्य आख्यात हैं, क्योंकि अस्तित्वभाव सब क्रियाओं में सामान्यरूप से विद्यमान रहता है अतः यहॉ 'वर्त्तते' सामान्य क्रिया होने से स्वतः अन्वित है।

क 1. प्रथम हेतु आधार व्याख्या के अनुपपन्न होने से खण्डित हो जाता है।

2. भाष्यकार द्वारा तिङत में धात्वर्थ के प्राधान्य का पस्पशाह्निक में कहाँ निराकरण किया गया है? यह अन्वेषणीय है।

3. वाक्यभेद करने पर भी दृश् की अपेक्षा से मृगकर्म में सरणक्रिया विद्यमान रहती है।

4. इस अर्थसंकोच में भाष्यकार की पूर्वोक्तियाँ प्रमाण हैं।

ख 1. सापेक्षभाव से यह संभव है पूर्ववर्त्ती क्रिया उत्तरवर्ती की अपेक्षा साधन है किन्तु वह भी अपनी पूर्ववर्त्ती की अपेक्षा साध्य है। अतः खण्डन निर्मूल है।

2. प्रथम हेतु पर आधारित होने के कारण यह भी उपेक्षणीय है।

3. अप्रामाणिक नहीं है यदि दृशिक्रिया की अपेक्षा मृग का कर्मत्व स्वीकार है तो उसमें आश्रित 'धावन' क्रिया के कर्मत्व स्वीकार करने में क्या आपत्ति है?

ग कैय्यट की व्याख्या में युक्ति–अभाव बतलाना तथा उस आधार पर उनको अज्ञ कहना अनुचित है। यह शिवरामेन्द्र की अहमन्यता का परिचायक है।

संदर्भ ग्रन्थाः

1. पचादयः क्रिया भवति क्रियायाः कतर्योः भवन्ति। महा0–1–3–14।
2. ननु 'भवति पचति' पश्य मृगो धावती'ति कर्तृकर्मभावेन क्रिया क्रियया संबध्यत एव। प्रदीप–3–1–67।
3. एवं तर्हि करणादिरूपेण समवायं न गच्छतीति विवक्षितम्। प्रदीप वहीं।
4. विषयभेदादेकस्याप्यर्थस्य साध्यसाधन भाव संबन्धसंभवाददोषः। प्रदीप वहीं।
5. तदुक्तं हरिणा– तत्र यं प्रति साध्यत्वमसिद्धा तं प्रति क्रिया। सिद्धा तु यस्मिन साध्यत्वं न तमेव पुनः प्रति।। 'मृगो धावति पश्ये'ति साध्यसाधनरूपता। यथा विषय भेदेन सरण–योपपद्यते।। वाक्य–3–8–50–51, प्रदीप वहीं।
6. तत्र कर्तृत्वकर्मत्वमाख्यातवाच्यस्य भावस्य न विरुद्धम्। तथाहि भवति क्रियापेक्षं मेव तस्य कर्तृत्वम । सर्वश्चार्थः स्वेन रूपेण भवतीति भवेन कर्तृत्वमुपपन्नम्।
7. एवं कर्मापि क्रियाफलत्वात् प्रधानमिति् कर्मत्वमपि तस्योपपद्यते। प्रदीप वहीं।
8. करणत्वादीनि तु सर्वात्मना गुणभावमन्तरेण नोपपद्यन्त इति प्राधान्येनाऽत्यन्त विरोधात्तस्य नोपपद्यन्ते। प्रदीप वहीं।
9. न भवतीति। क्रियासमवायाभाव इति शेषः। पाको वर्त्तत इति। एवं 'पचति वर्त्तते' इत्यपि प्रयोगो न भवतीतिः भावः। रत्नप्रकाश–3–1–67।
10. एतेन 'ननु 'भवति पचति'.....न गच्छतीति विवक्षितम्' इति निरस्तम् रत्नप्रकाश वहीं।
11. 'भवति पचति' इत्यत्र पचतीतित्यनेनोक्तस्यैव भवनकर्तुर्भवतीत्येन 'द्वावपूपावानय' इत्यादावपूपावित्यनेनोक्तस्य द्वावित्यनेनेवानूदितत्वेन तिङ्र्थस्य धात्वर्थे कर्तृत्वेनान्वयाभावात्। रत्नप्रकाश, वहीं।
12. तिङन्ते धात्वर्थप्राधान्यस्य पस्पशाह्निनयक एव निराकृतत्वात्। रत्नप्रकाष, वहीं।
13. 'पश्य मृगो धावति' इत्यत्र 'घटोऽस्ति, आनय' इत्यादाविव तमित्यध्याहारेण वाक्यभेदस्यैववाश्रयितुमुचितत्वात्। रत्नप्रकाश, वहीं।
14. तथा ' क्रिया क्रियया समवायं न गच्छति' इति भाष्यस्य करणादिरूपेण समवायं न गच्छतीति संकोचाश्रये मानाभावाच्च। रत्नप्रकाश, वहीं।
15. यदप्युक्तम् 'ननु साध्यत्वात्.....सम्बन्धसम्भवाददोषः। तदुक्तं हरिणा तत्र यं प्रति .....सरणस्योपपद्यते।। इति' तदपि न, साध्यस्य साधनत्वं नास्तीत्यस्य निर्मूलत्वेन शंकायास्तुच्छत्वात्। अत एव तदभ्युपगमेन विषयभेदेन समाधानस्यापि तुच्छत्वात्। 'पश्य मृगो धावति' इत्यत्र दृशिक्रियायां धावनस्य कर्मत्वे मानाभावाच्च। रत्नप्रकाश, वहीं।
16. यदप्युक्तम्– 'तत्र कर्तृकर्मत्व..... तस्य नोपपद्यन्ते' इति। तदपि न, प्रकृत भाष्य विरोधेनाख्यातवाच्यभावस्य युक्त्या धात्वर्थान्तरं प्रतिकर्तृत्वकर्मसाधनेन स्वमौर्ख्यस्यैव दाढ्र्यात् कर्तृत्वकर्मत्वोपपत्तौ करणत्वाद्यनुपपन्तौ च दृढयुक्त्यदर्शनाच्च। रत्नप्रकाश, वहीं।
17. अदादिगण–53,धातुपाठ।
18. कृत्यल्युटो बहुलम्। पा0सू03–3–113।
19. आख्यायतेऽनेन क्रिया प्रधानभूतेत्याख्यातस्तिङन्तः।
20. भावप्रधानमाख्यातम्। निरूक्त–1–1।
21. क्रियाप्रधानम् आख्यातम्। महा0–5–3–66।
22. का पुनः क्रिया? ईहा। का पुनरीहा? चेष्टा। का पुनर्चेष्टा? व्यापारः। महा0–3–1–1।
23. क्रिया नामेयमत्यन्ताऽपरिदृष्टा। अशक्या क्रिया पिण्डीभूता निदर्शयितुम्, यथा गर्भो निर्लुठितः। महा0–1–3–1, वा0–2।
24. भावः पुनरेक एव। महा0–3–1–67।
25. तस्याद्रव्यधर्मत्वादसत्वभूतत्वाच्चाख्यातवाच्यस्य भावस्य। प्रदीप–3–1–67।
26. षड्भावविकारा भवन्तीति वार्ष्यायणिः–जायतेऽस्ति विपरिणमते वर्धतेऽपक्षीयते विनश्यतीति। निरूक्त–1–2।
27. क्रियापि क्रिययेप्सिततमा भवति। संपश्यति क्रियया प्रार्थयति क्रियया अध्यवस्यति क्रियया वा। एवं क्रियापि कृत्रिमं कर्म। महा0–3–1–14।

28. पचादयः क्रिया भवति क्रियायाः कर्न्र्यो भवति। महा0–3–1–14।
29. पूर्वापरीभूतं भावमाख्यातेनाचष्ट व्रजति पचतीत्युपक्रमप्रभृत्यपवर्गपर्य्यन्तम् ।यास्कनिरूक्त–1–1।
30. भवतीति भावस्यास्ते शेते व्रजति तिष्ठतीति ।यास्कनिरूक्त–1–2।
31. तत्रायुतसिद्धयोः सम्बन्धः समवायः। तर्कभाषा पृ0 26।
32. अन्ययोस्तु संयोग एव। तर्कभाषा, वहीं।
33. गुणभावमिति। इदं चिन्त्यं, कर्मणः क्रियाफलाश्रयत्वादिव कर्तुः क्रियाश्रयत्वादिव च प्राधान्यवत् करणस्यापि स्वव्यापाराऽव्यवधानेन फलोत्पादकतयाऽन्यकारकापेक्षया प्राधान्यमस्त्येव। तस्मात्स्वभावत एव तदन्वयाऽभाव इति बोध्यम्। उद्योत, वहीं।
34. महा0–3–1–67